1. प्रादेशिक विधि

प्रादेशिक विधि (Regional Method) को जन्म देने का श्रेय हर्बर्टसन को है। प्रारम्भ में दुनियाँ का विभाजन राजनीतिक आधार पर होता था। यह विभाजन उपयुक्त नहीं था। राजनीतिक अस्थिरता को कारण हमेशा दुनियाँ के देशों की सीमाऐं बदलती रहतीं थीं। स्थायी हल केवल प्राकृतिक दशाओं के आधार पर ही उपयुक्त हो सकता था। इस सम्बन्ध में सर्वप्रथम उन्होंने 1905 ई० में दुनियाँ को कुछ प्राकृतिक भागों में विभक्त किया । बाद

में 1918 ई० में कोपेन (Koppen) ने एक दूसरा विभाजन प्रस्तुत किया। कोपेन ने दुनियाँ को 14 प्राकृतिक भागों में बाँटा।

सन् 1931 में थॉर्नवेट (Thronwaits) ने 'ज्योग्राफीकल रिव्यू (Geographical Review) में अपना एक और अलग दृष्टिकोण प्रस्तुत किया है। इस तरह अनेक परिवर्तनों के बाद आज की प्राकृतिक दशाओं के आधार पर विभाजन हमें उपलब्ध हैं।

यों 'प्रदेश' को परिभाषित करना कठिन है परन्तु प्रादेशिक विधि के अन्तर्गत संसार को समान भौगोलिक कारणों- धरातल, जलवायु, वनस्पति आदि के आधार पर अलग-अलग प्रदेशों में बाँट लिया जाता है। पुनः इसी प्रकार विश्व अथवा देश के किसी भी भाग का प्राकृतिक आधार पर विभाजन किया जा सकता है। उदाहरणार्थ- भारत को तीन प्राकृतिक भागों में बाँटा गया है: (i) हिमालय का पहाड़ी प्रदेश, (ii) गंगा-ब्रह्मपुत्र का मैदान और (iii) दक्षिण का पहाड़ी प्रदेश। इसी प्रकार राजस्थान को भी चार प्राकृतिक प्रदेशों में बाँटा जा सकता है:

(i) अरावली का पहाड़ी प्रदेश।
(ii) दक्षिण-पूर्व (कोटा, डूंगरपुर आदि) का पठारी प्रदेश।
(iii) थार का मरुस्थल प्रदेश।
(iv) उत्तर का मैदानी भाग।

प्रादेशिक विधि के आधार पर विश्व को निम्न भागों में विभक्त किया गया है:

1. उष्ण कटिबन्धीय प्रदेश-
  (i) भूमध्यरेखीय प्रदेश,
  (ii) सूडान तुल्य प्रदेश या सवाना तुल्य प्रदेश,
  (iii) मानसूनी प्रदेश,
  (iv) सहारा तुल्य प्रदेश या उष्ण मरुस्थलीय प्रदेश।

2. उष्ण शीतोष्ण भागों के प्रदेश-
  (i) भूमध्य सागरीय प्रदेश,
  (ii) चीन तुल्य प्रदेश या समशीतोष्ण प्रदेश,
  (iii) ईरान तुल्य प्रदेश या शीतोष्ण मरुभूमि प्रदेश।

3. शीत शीतोष्ण कटिबन्धीय प्रदेश-
  (i) पश्चिमी यूरोप तुल्य प्रदेश,
  (ii) सेंट लारेंस तुल्य प्रदेश,
  (iii) प्रेरीज तुल्य प्रदेश,
  (iv) मध्य यूरोप तुल्य प्रदेश,
  (v) साइबेरिया तुल्य प्रदेश।

4. शीत भागों के प्रदेश का ध्रुवीय प्रदेश-
  (i) टुण्ड्रा प्रदेश,
  (ii) पहाड़ी ध्रुवीय प्रदेश।

'राष्ट्रीय एटलस ऑफ इण्डिया' में भारत को मोटे रूप से 3 तथा 20 उप प्राकृतिक भागों में विभक्त किया गया है। इन उप-विभागों को माइक्रो प्रदेश (Micro Regions) कहते हैं।

आज प्रदेश की अवधारणा में कार्यात्मक पक्षों (Functional aspects) पर विचार किया जाता है कि कार्यकलाप की दृष्टि से कौन से प्रदेश समान हैं। फिर भी यह सभी स्वीकार करते हैं कि किसी प्रदेश की परिस्थितियाँ व्यापक रूप से समान हो सकती हैं, पूर्ण या लगभग समान परिस्थियां मिलना सम्भव नहीं है।

प्रादेशिक विधि के अंतर्गत अध्ययन के आधार

प्रादेशिक विधि के द्वारा पढ़ाने के लिए निम्न पदों (Steps) के आधार पर अध्ययन करना होता है:

(i) स्थिति

(ii) जलवायु-तापक्रम, वर्षा, नमी आदि।

(ii) मिट्टी।

(iv) वनस्पति।

(v) जीव जन्तु

(vi) मानव-जीवन।

(vii) आर्थिक विकास - उद्योग-धन्धे, व्यापार आदि।

(viii) भविष्य की सम्भावनाएँ।

प्रादेशिक विधि से लाभ

(1) प्रादेशिक विभाजन वैज्ञानिक आधार पर है अतः स्थायी है। यह राजनीतिक विभाजन की तरह बदलता नहीं है।

(2) इस विधि की सबसे बड़ी विशेषता है कि इसमें कार्य-कारण के आधार पर क्रमशः बढ़ा जा सकता है। उदाहरणार्थ- भूमध्यरेखीय प्रदेशों की स्थिति के आधार पर गर्मी और वर्षा का प्रभाव वनस्पति, जीव-जन्तुओं एवं मानव-जीवन पर देखा जा सकता है इस तरह तर्क के आधार पर ही छात्र बहुत कुछ जान लेते हैं।

(3) इसमें मनोवैज्ञानिक सिद्धांतों का पालन किया जाता है, यथा प्रश्न ज्ञात से अज्ञात की ओर, आसान से कठिन की ओर आदि सूत्रों के आधारों पर किये जाते हैं।

(4) कम समय में अधिक ज्ञान दिया जा सकता है। सम्पूर्ण दुनिया को 14 प्राकृतिक भागों में 14 दिन में ही पढ़ाया जा सकता है। यही कारण है कि इस विधि का शैक्षिक मूल्य अधिक है।

(5) यह सरलतम विधि है। कुछ निश्चित पदों के आधार पर ही अध्ययन किया व कराया जा सकता है।

(6) एक प्राकृतिक प्रदेश की तुलना दूसरे प्राकृतिक प्रदेश के साथ आसानी से की जा सकती है।

(7) इसमें मानवीय पहलुओं पर अधिक जोर दिया जाता है। इस प्रकार विभिन्न देशों के मानवीय रहन-सहन एवं जीवन का पता लगता है। इससे छात्र अपने देश के साथ तुलना कर सकते हैं

(8) यह विधि वैज्ञानिक है।

प्रादेशिक विधि के दोष

(1) यह विधि निम्न कक्षाओं के स्तर पर काम में नहीं लाई जा सकती है। कम से कम माध्यमिक स्तर पर ही इसका प्रयोग किया जा सकता है।

(2) प्राकृतिक प्रदेशों की सीमा निश्चित नहीं की जा सकती।

(3) प्राकृतिक प्रदेशों का विभाजन आसान नहीं है।

(4) भौगोलिक विषय-वस्तु की कभी-कभी पुनरावृति हो जाती है।

2. कहानी विधि

भूगोल विषय के ज्ञान का प्रसार कहानियों से ही हुआ है। कहानी ज्ञान के हस्तांतरण का एक प्रारंभिक रूप था। जैसे जैसे जटिलता बढ़ती गई, इसके हस्तांतरण की विधियाँ भी बदली हैं। परन्तु आज भी प्रारम्भिक स्तर पर कहानी द्वारा शिक्षण उपयुक्त रहता है।

प्रारंभिक स्तर पर कहानी का स्वरुप

(1) ये कहानियां पहाड़, सूर्य, वर्षा, नदी,बादल, देवी-देवताओं के रुप में हो सकती हैं।

(2) पुनः स्तर के बढ़ने के साथ-साथ धीमे-धीमे साहसिक जीवन की कहानियाँ हो सकती हैं।

(3) क्रमशः धीमे-धीमे ज्ञानात्मक कहानियों के रुप में विषय का ज्ञान दिया जा सकता है।

परन्तु कहानी द्वारा भूगोल शिक्षण आसान नहीं है। कहानी कहना कला है। हर शिक्षक सफल कहानीकार नहीं हो सकता। कहानी आकर्षक होनी चाहिए। स्तर के बढ़ने के साथ भूगोल में क्रमशः विभिन्न जनजातियों के रीति-रिवाज और रहन सहन की व्याख्या की जा सकती है।

इस प्रकार भौगोलिक कहानियों की सामग्री में प्रमुख रुप से विभिन्न उपजों की कहानियाँ, प्राकृतिक घटनाओं पर आधारित कहानियाँ, ज्वालामुखी-भूकम्प आदि की कहानियाँ, आदि सम्मिलित की जा सकती हैं।

3. निरीक्षण विधि

वस्तुतः यह एक मुख्य तकनीक है। निरीक्षण विधि का भूगोल में महत्त्वपूर्ण स्थान है। जहाँ भूगोल में व्यावहारिक अध्ययन का प्रश्न है- निरीक्षणात्मक विधि का सबसे अधिक महत्त्व है। यह विधि प्रारम्भ में गृह-प्रदेश के भूगोल से शुरु की जा सकती है। यहाँ छात्र स्वयं निरीक्षण करके भौगोलिक तथ्यों का ज्ञान ग्रहण कर सकते हैं। धीमे-धीमे निरीक्षण विधि से उनके ज्ञान में वृद्धि होती रहेगी। यदि शिक्षक छात्रों को उचित निरीक्षण क्षेत्र एवं तरीके से परिचित कराए तो वे अधिक से अधिक थोड़े समय में ज्ञान प्राप्त कर सकते हैं। वे पास के प्रदेश के पहाड़, पठार, मैदान, नदियाँ, भूमि-कटाव, कृषि-उपजें, उद्योग आदि के बारेमें सामान्य ज्ञान अर्जित कर सकते हैं।

परंतु निरीक्षण में छात्रों का मन तभी लग सकता है जबकि अध्यापक प्रेरित करता रहे। बिना प्रेरणा के कभी-कभी वे निष्क्रिय हो सकते हैं। बालक स्वभाव से क्रियाशील

जीवन पसन्द करते हैं। इस विधि से उनकी जिज्ञासा शान्त होती है क्योंकि स्वभावतः बच्चे जिज्ञासु होते हैं।

वैसे निरीक्षण-विधि छोटी कक्षाओं से लेकर माध्यमिक स्तर तक भली प्रकार अपनाई जा सकती है। पर छोटी कक्षाओं में निरीक्षण का क्षेत्र शाला के निकट होगा तथा निरीक्षण-सामग्री पास के क्षेत्र से ही सम्बंधित होगी। विशेष तर्क आदि की आवश्यकता नहीं है। परन्तु उनके साथ-साथ माध्यमिक स्तर पर तर्कपूर्ण निरीक्षण के लिए प्रेरित किया जाना चाहिए। कार्य और कारण क्यों- निरीक्षण के लेए स्वाभाविक प्रश्न होने चाहिए।

निरीक्षण विधि को अपनाने के पूर्व शिक्षक को निम्न बातों पर विचार करना उपयुक्त होगा:

(i) उपयुक्त स्थल का चुनाव

(ii) निरीक्षण की योजना सुसंगठित हो।

(iii) कम समय में अधिकाधिक वस्तुओं के निरीक्षण।

(iv) उपयुक्त स्तरानुसार निरीक्षण।

(v) निरीक्षण की डायरी।

(vi) निरीक्षण विषयों पर विचार विमर्श।

(vii) अन्त में निरीक्षण स्थलों के संबंध में निश्चित बिन्दुओं पर लेखन।

प्रभावी निरीक्षण के लिए निरीक्षणकर्ता को निरीक्षण विश्वसनीयता भी स्थापित करनी चाहिए। निरीक्षण विश्वसनीयता के लिए किसी क्षेत्र के निरीक्षण को एक टीम या स्वयं के निरीक्षण द्वारा पुष्ट करना चाहिए।

4. वर्णानात्मक भूगोल विधि

देश के विभिन्न भागों के निवासियों के जीवन विभिन्न प्राकृतिक दृश्यों, पृथ्वी पर आन्तरिक एवं बाह्य शतियों के कार्य-कलापों का वर्णन, वर्णनात्मक विधि से किया जा सकता है। परन्तु यह वर्णन-सरल सुबोध भाषा मे होना चाहिए। वैसे यह विधि, कहानी विधि के निकट है। प्रारंभिक कक्षाओं के लिए यह विधि उपयुक्त रहती है। भूगोल के विकास में प्रारंभिक समय में यही विधि काम में ली जाती थी। उदाहरणार्थ-वर्णन के विषय निम्न प्रकार के हो सकते हैं।

(1) पृथ्वी के जन्म का वर्णन।

(2) पृथ्वी के विकास का वर्णन।

(3) पृथ्वी के मानुष्यों के निवास एवं उनके एवं कार्य-कलापों का वर्णन।

विशेष अध्ययन के लिए 'भूगोल-शिक्षण के विविध स्तर' अध्याय देखें।

5. तुलना विधि

वास्तव में छात्र बहुत सा ज्ञान तुलना के द्वारा ही ग्रहण करते हैं। छात्र अनजान प्रदेश के बारे में पढ़ते समय जाने गये प्रदेश की बातों से तुलना करके पढ़ते हैं। प्रादेशिक विधि के अंतर्गत पढ़ाये जाने वाले पाठों में तो बहुधा अन्य प्राकृतिक प्रदेशों के साथ तुलनात्मक ढंग से पढ़ना एवं पढ़ाना बहुत ही उपयुक्त होता है। चाहे यह विभिन्न विश्व के प्रदेश हों अथवा देश के प्राकृतिक प्रदेश हों। उत्तरी भारत की तुलना दक्षिणी भारत से की जा सकती

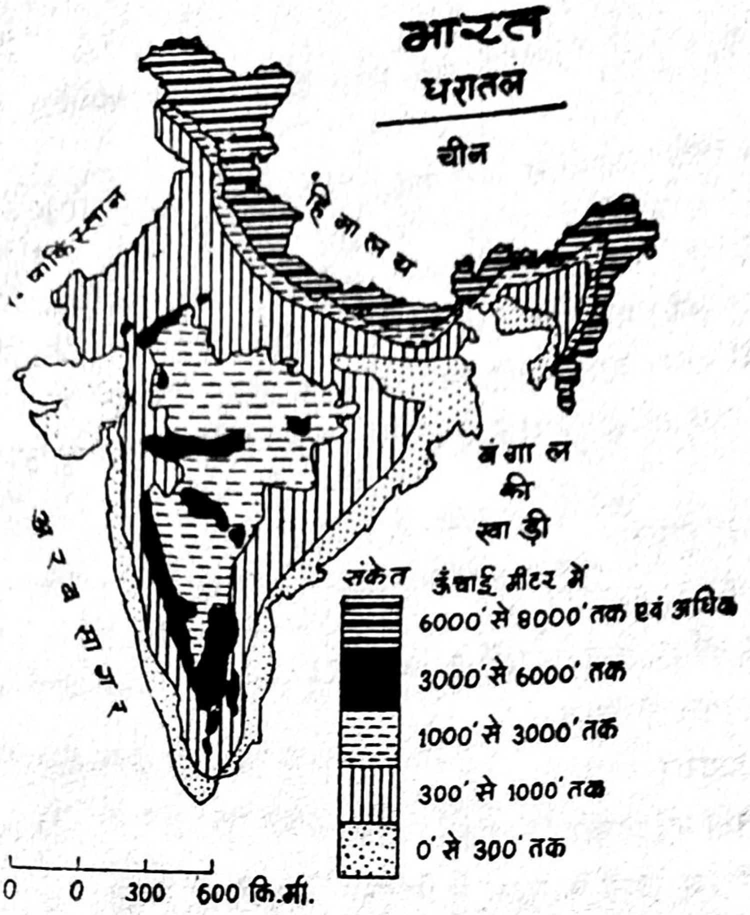
भारत
धरातल
चीन
हिमालय
पाकिस्तान
बंगाल की खाड़ी
अरब सागर
संकेत ऊँचाई मीटर में
6000' से 8000' तक एवं अधिक
3000' से 6000' तक
1000' से 3000' तक
300' से 1000' तक
0' से 300' तक
0 0 300 600 कि.मी.

मानचित्र—धरातल

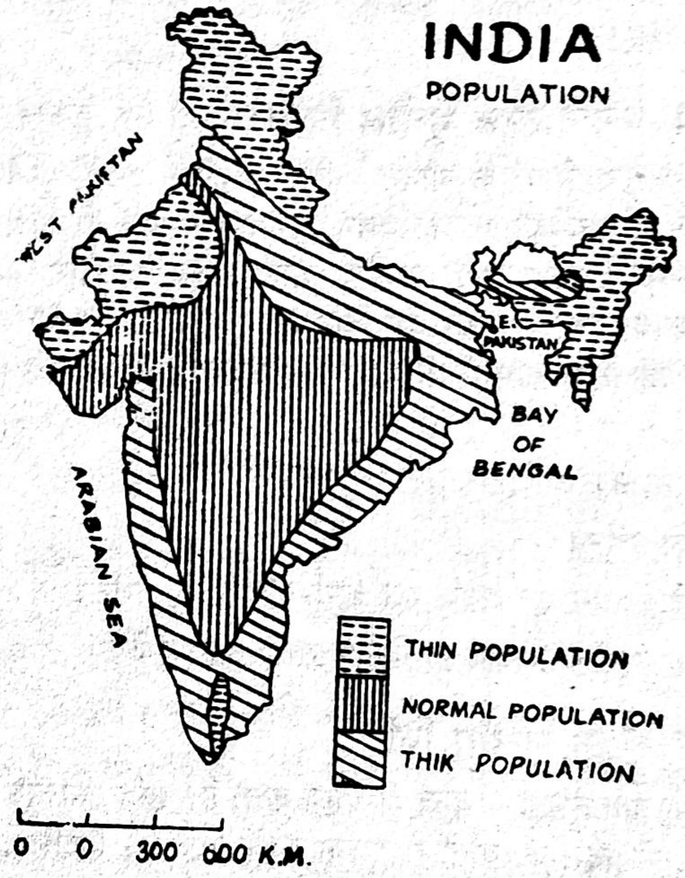
INDIA
POPULATION
WEST PAKISTAN
E. PAKISTAN
BAY OF BENGAL
ARABIAN SEA
THIN POPULATION
NORMAL POPULATION
THIK POPULATION
0 0 300 600 K.M.

मानचित्र—भारत की जनसंख्या

है। वैसे भी दैनिक जीवन में आदमी अपने से तुलना करके चलता है। ऐसा करने से उसका ज्ञान स्थाई हो जाता है।

स्थानीय भूगोल का ज्ञान इस दृष्टि से बड़ा महत्त्व का है। स्थानीय भूगोल में ऐसी अनेक बातें एवं अनुभव होते हैं। इन्हीं अनुभवों को वह अन्य प्रदेश के अनुभवों से तुलना करता है, और इस प्रकार उसके ज्ञान में निरन्तर वृद्धि होती रहती है।

तुलनात्मक अध्ययन का महत्त्व उसके क्षेत्रीय ज्ञान में परिलक्षित होता है। किसी भी स्थान के धरातल के आधार पर आसानी से वहाँ के (i) आवागमन, (ii) बसावट एवं जनसंख्या, (iii) वनस्पति तथा (iv) वर्षा आदि को तुलनात्मक रूप से पढ़ाया जा सकता है। उदाहरणार्थ, भारत के मानचित्र में वर्षा को दिखाने वाले भाग देखिए। मानचित्र से आप देखेंगे कि पहाड़ी ढालों पर अधिक वर्षा होती है। पुनः जनसंख्या मानचित्र में देखें तो पता चलेगा कि जनसंख्या एवं बसावट मैदानी भागों में अधिक और पठारी व पर्वतीय भागों में क्रमशः कम है। जनसंख्या के वितरण की तुलना वर्षा के वितरण से भी की जा सकती है। देखिए, दोनों में कितना साम्य है! इस प्रकार किया गया अध्ययन अत्यन्त स्वाभाविक एवं ग्राह्य हो जाता है।

यदि उपर्युक्त तुलनात्मक अध्ययन छात्रों के स्वतः करने दिया जाय और शिक्षक मात्र मार्गदर्शन एवं यदा-कदा विचारपूर्वक प्रश्न करता जाय तो छात्र स्वतः अपने आप तर्क के आधार पर निर्णय लेकर भूगोल विषय को समझ सकने में सक्षम हो जायेंगे।

तुलनात्मक विधि के गुण

यह विधि माध्यमिक स्तर के छात्रों के लिए अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है क्योंकि छात्र स्वयं यह चाहता है कि वह महत्त्वपूर्ण निर्णय अथवा ज्ञान स्वतः सीखे। यह विधि मनोवैज्ञानिक है और तर्क एवं सोचने की शक्ति का विकास छात्रों में करती हैं। भूगोल विषय में मानचित्र को समझने, प्राकृतिक वातावरण एवं सांस्कृतिक वातावरण को समझने एवं समझाने में इस विधि का बड़ा महत्वपूर्ण स्थान है।

तुलनात्मक विधि के दोष

यह विधि प्रारंभिक स्तर पर अधिक सफलता से नहीं अपनाई जा सकती। फिर भी प्राथमिक स्तर पर छात्र अपने घर के आस-पास की वस्तुओं की तुलना के ही आधार पर बहुत कुछ सीखते हैं।

जब तक छात्रों में निर्णय लेने की शक्ति एवं तर्कपूर्ण विवेचन का विकास नहीं होता तब तक वे तुलना करने में सफल नहीं हो सकते। अतः शिक्षक को यह तथ्य स्पष्ट होना चाहिए।

6. आगमन विधि

इस विधि के अंतर्गत छात्रों के सामने अनेक उदाहरण रखे जाते हैं। छात्र इन उदाहरणों के आधार पर निष्कर्ष निकालते हैं। उदाहरणार्थ, भारत के दक्षिणी भाग के विभिन्न भागों के शहरों के तापक्रम के बारे में छात्रों को बताया जाय, पुनः उत्तरी भारत के शहरों के तापक्रम के बारे में बताया जाय और फिर छात्रों से निष्कर्ष निकालने को कहा जाय तो दोनों प्रदेशों के तापक्रम की भिन्नता संबंधी जो निष्कर्ष छात्र निकालेंगे कि दक्षिण के शहर

उत्तर के शहरों से अधिक गर्म हैं तो यह आगमन विधि कहलाएगी। इस तरह यह विधि विशिष्ट से सामान्य और सम्पूर्ण से अंश की ओर चलती है।

इस विधि की सफलता के लिए यह आवश्यक है कि शिक्षक विभिन्न प्रकार के उदाहरण देने में चतुर हो, तभी छात्र निष्कर्ष निकालने में समर्थ होंगे। इस तरह शिक्षक की पूर्ण तैयारी विषयवार होना अत्यधिक आवश्यक है। पुनः उदाहरण छात्रों की रुचि व स्तर के अनुकूल हों। इस तरह मनोवैज्ञानिक पहलू पर विचार करके ही शिक्षक इस विधि में सफल हो सकता है।

आगमन प्रणाली की विशेषताएँ

(i) यह एक ऐसी विधि है जिसमें छात्र स्वयं तर्क के आधार पर निर्णय लेते हैं।

(ii) इससे छात्रों की विचार-शक्ति का विकास होता है।

(ii) छात्रों को क्रियाशीलता के सिद्धांत के अनुसार कार्य करने का मौका मिलता है।

(iv) छात्र एवं शिक्षक दोनों को क्रियाशील रहने का अवसर मिलता है।

(v) इसमें रटने की प्रवृत्ति को प्रोत्साहन नहीं मिलता है।

आगमन विधि की सीमाएँ

(1) अधिक उदाहरण नहीं देने चाहिए ताकि विद्यार्थियों को अरुचि न हो।

(2) शिक्षक को काफी धैर्य से प्रयत्न करना होता है।

(3) विद्यार्थियों को खोज तथा वैज्ञानिक दृष्टिकोण अपनाकर किसी समस्या के समाधान का दृष्टिकोण अपनाना चाहिए।

7. निगमन विधि

यह विधि आगमन विधि के विपरीत है। इस विधि में सबसे पहले सिद्धांत प्रस्तुत कर दिये जाते हैं। पुनः अनेक उदाहरणों के आधार पर सिद्धान्त का स्पष्टीकरण किया जाता है। इस तरह इस विधि में सामान्य से विशिष्ट की ओर चला जाता है।

वर्षा, भयंकर गर्मी का मानव-जीवन पर क्या प्रभाव पड़ता है, आदि छात्रों को बताया जा सकता है। पुनः कालाहारी, थार एवं सहारा मरुस्थल के मानव-जीवन के उदाहरण दिये जा सकते हैं।

इस विधि का दोष यह है कि इसका प्रयोग छोटी कक्षाओं में नहीं किया जा सकता है।

प्रभावी शिक्षण के लिए शिक्षक को आगमन एवं निगमन दोनों विधियों का प्रयोग करना चाहीए।

8. भाषण विधि

यह केवल उच्च कक्षाओं के लिए ही उपयुक्त है। इस विधि के अंतर्गत शिक्षक विद्यार्थियों के सम्मुख किसी विषय अथवा सिद्धांत पर अभिभाषण करता है। विद्यार्थी ग्रहण करते हैं। इस विधि से ज्ञान शीघ्र दिया जा सकता है।

सीमाएँ

(i) इसका प्रयोग सभी स्तरों पर नहीं किया जा सकता है।

(ii) केवल उच्च कक्षाओं में ही, जहाँ छात्र स्वयं केवल बिन्दुओं के आधार पर सोच सकते हैं, इस विधि का प्रयोग हो सकता है।

(iii) यह अमनो वैज्ञानिक भी है। चाहे छात्र सुने अथवा नहीं, आवश्यकता हो अथवा नहीं, छात्रों को मूक बैठकर सुनना पड़ता है।

(iv) यह रुचि के सिद्धान्त के विपरीत है।

गुण

यह विधि माध्यमिक स्तर से ऊपर की कक्षाओं में सर्वाधिक प्रचलित है। इसके प्रयोग का सबसे बड़ा कारण इसकी सरलता है। कोई भी व्यक्ति एक दिन की तैयारी के बाद ही आसानी से बनाए गए नोट्स से भाषण दे सकता है।

9. प्रश्नोत्तर विधि

इस विधि को सुकरात विधि (Socratic Method) भी कहते है। इसके शिक्षण में शिक्षक पूर्व-ज्ञान के आधार पर छात्रों से प्रश्न करके छात्रों को विषय के प्रति आकर्षित करता है। पुन: मुख्य शिक्षण बिन्दुओं के आधार पर विचारपूर्ण प्रश्न करता है। शिक्षक की सफलता विचारोतेजक प्रश्नों एवं भाषा की सरलता, छात्रों के स्तर, प्रश्नों के गठन आदि पर निर्भर करती है।

लाभ

(1) विद्यार्थियों के अन्दर उत्सुकता पैदा की जाती है तथा पाठ में रुचि पैदा की जाती है।

(2) पूर्व-ज्ञान के आधार पर नवीन ज्ञान दिया जाता है।

(3) इससे पुराने ज्ञान को नवीन ज्ञान के साथ संबद्ध किया जाता है।

(4) छात्रों के स्तर के अनुकूल प्रश्न किए जाते हैं। आवश्यकतानुसार प्रश्नों की भाषा सरल और स्तरानुसार बनाई जा सकती है।

(5) छोटी कक्षाओं एवं माध्यमिक स्तर तक यह विधि पूर्ण सफलता से प्रयुक्त हो सकती है।

दोष

(1) सभी शिक्षक कुशल प्रश्नकर्त्ता नहीं हो सकते।

(2) छात्रों के स्तर को जानना आसान नहीं है।

(3) कभी-कभी जहाँ हम सोचते हैं कि छात्र जानते होंगे, विधार्थी नहीं जानते है और कभी-कभी जहाँ हम समझते हैं कि वे नहीं जानते, वे जानते होते है।

10. विचार-विमर्श विधि

इस विधि के अंतर्गत छात्र एवं शिक्षक दोनों ही मिलकर विषय पर प्रश्न-परिप्रश्न करते हैं। इस तरह परस्पर सहयोग से अधिगम अध्यापन किया जाता है। वस्तुत: यह विधि समस्या-विधि की सम्पूर्ण प्रक्रिया नहीं कही जा सकती। यह सिर्फ केवल एक भाग की पूर्ति करती है। उदाहरण के तौर पर, पहले शिक्षक कोई विषय प्रस्तुत करता है, बाद

में वह उस विषय पर छात्रों के विचार आमंत्रित करता है। पुनः शिक्षक और विद्यार्थी दोनों ही प्रक्रिया में भाग लेते हैं।

छात्रों से किसी विषय पर पूर्व-तैयारी के लिए कह दिया जाय। जब वे तैयार होकर आयें तब शिक्षक अनेक प्रश्न-परिप्रश्न करके विचार-विमर्श की स्थिति पैदा करे।

विचार-विमर्श विधि का जन्म छात्रों के अधिकाधिक सहयोग को आमन्त्रित करने के लिए हुआ। व्याख्यान विधि, पुस्तकीय विधि, प्रश्नोत्तर विधि आदि शिक्षक के ही महत्त्व को प्रतिपादित करती है। विचार-विमर्श विधि में छात्रों को लगभग बराबर सहयोग किया जाता है।

यह विधि दो प्रकार की हो सकती है : (1) औपचारिक, एवं (2) अनौपचारिक। औपचारिक विधि में प्रायः किसी बिन्दु पर विचार-निमर्श के निए निर्णय आदि के लिए अध्यक्ष, सचिव आदि को चुन लिया जाता है जबकि अनौपचारिक विधि में यह बाधा नहीं होती। सभी बारी-बारी से पक्ष-विपक्ष में विचार-विमर्श करते हैं।

इस विधि से लाभ यह है कि विचार-विमर्श के बाद विषय अपना हो जाता है। यदि विचार-विमर्श के बाद छात्रों को उसी बिन्दु पर लिखने के लिए कहा जाय तो और उपयुक्त रहता है। आजकल यह विधि थोड़े हेर-फेर के साथ लेख-वाचन (Paper Reading) के रुप में प्रयुक्त की जाती है जिसमें अंतिम चरण विचार-विमर्श का होता है। इस विधि का दोष यही है कि विचार-विमर्श रिक्तता में शुरु नहीं किया जा सकता। जब तक पूर्व-तैयारी नहीं होगी, विचार-विमर्श उपयुक्त नहीं होता। अतः विचार- विमर्श एक पूरक विधि है।

11. पाठ्य-पुस्तक विधि

भारतीय स्कूलों में सबसे अधिक प्रचलित पाठ्य-पुस्तक विधि है। भाषा के ज्ञान तथा प्राम्भिक सामाजिक ज्ञान के विषयों के लिए भी यह विधि महत्त्वपूर्ण रही है। सामान्य स्कूलों में पाठ्य-पुस्तक विद्यार्थी और शिक्षक दोनों का सहारा रही है। परन्तु पाठ्य-पुस्तक द्वारा शिक्षण उतना महत्त्वपूर्ण नहीं है। प्रायः इस विधि में शिक्षक पढ़ता जाता है तथा आवश्यक बिन्दुओं के बारे में स्पष्टीकरण करता जाता है। इस तरह शिक्षक के लिए यह आवश्यक हो जाता है पाठ्य-पुस्तक पर उसका पूर्ण अधिकार हो।

पाठ्य-पुस्तक विधि के उपयोग

(1) इस विधि का प्रयोग प्रारंभ में कंठाग्र करने के लिए होता था। संस्कृत विद्यालयों में तो आज तक यह विधि प्रचलित है। भूगोल में भी भौगोलिक शब्दों, नदियों, नगरों आदि को कंठस्थ किया जाता था।

(2) शिक्षक के समझाने पर जो बात समझ में नहीं आती है उसे छात्र पुस्तक के अध्ययन से समझने का प्रयास करते हैं।

(3) कभी-कभी छात्र कक्षाओं में अनुपस्थित रहते हैं, कभी छात्रों का मन न लगने से कक्षा में उनका ध्यान नहीं रहता। ऐसी दशा में छात्र पुस्तक को घर पर पढ़ सकते हैं।

(4) इस विधि द्वारा शिक्षक द्वारा निर्दिष्ट कार्य को पूरा करने में सहायता मिलती है।

(5) विभिन्न आँकड़ों व सूचनाओं के द्वारा शिक्षक एवं विद्यार्थी दोनों के लिए यह विधि लाभप्रद है।

अच्छी पाठ्य-पुस्तक के गुण

(i) पाठ्य-पुस्तक की विषय-वस्तु सही हो। यह ज्ञानार्जन का प्रामाणिक साधन हो।

(ii) पाठ्य-पुस्तक स्तरानुसार हो।

(iii) पाठ्य-सामग्री क्रम-बद्ध, सरल से कठिन के सिद्धान्त पर गठित की गई हो।

(iv) पाठ्य-पुस्तक सामान्य छात्र एवं विशिष्ट छात्र दोनों के लिए उपयोगी हो।

(v) भूगोल की पाठ्य-पुस्तक में उचित चित्र, मानचित्र एवं रेखाचित्र होना चाहिए।

(vi) पाठ्य-पुस्तक में उचित अभ्यास आदि के प्रश्न प्रत्येक पाठ के अन्त में हों।

विशेष अध्ययन के लिए 'पाठ्य-पुस्तक' अध्याय को देखें।

12. भ्रमणात्मक विधि

जैसा कि पहले कहा जा चुका है, अधिकांश भूगोल, भूगोल-कक्ष से बाहर जाना जा सकता है। यदि छात्र अपने ज्ञान चक्षुओं को खोलकर अपने आस-पास की परिस्थितियों का अध्ययन करे, तो उसे बहुत से भौगोलिक तथ्यों का ज्ञान यों ही हो जायेगा। परन्तु छात्र को स्वयं ज्ञानार्जन में समय अधिक लगता है। बहुत से तथ्य उसकी समझ में आसानी से नहीं आ पायेंगे। इसके विपरीत, यदि शिक्षक स्वयं एक सुनियोजित योजना के द्वारा छात्रों को भ्रमण पर ले जाये, आवश्यकतानुसार यथास्थान निर्देश दे तो वही ज्ञान छात्रों को शीघ्र हृदयंगम हो सकता है।

छात्रों को उनके आस-पास के वातावरण के आधार पर भ्रमण द्वारा कराया गया ज्ञान भ्रमणात्मक विधि कहलाता है। इस विधि में छात्रों की रुचि, मानसिक स्तर एवं शारीरिक क्षमता के आधार पर छात्रों के भ्रमण को नियोजित किया जाता है। उदाहरणार्थ- प्राथमिक स्तर पर छात्रों को निकटस्थ क्षेत्र का ही भ्रमण कराया जा सकता है, जबकि मिडिल एवं उच्च माध्यमिक स्तर पर भ्रमण की दूरी क्रमशः बढ़ाई जा सकती है। पुनः ग्रमीण क्षेत्र के स्कूल की भ्रमण - योजना के अन्तर्गत अध्ययन की जाने वाली सामग्री शहरों के स्कूल की अध्ययन-सामग्री से भिन्न होगी।

शिक्षक का यह दायित्व हे कि वह छात्रों को ऐसे स्थानों पर भ्रमण के लिए ले जाय, जहाँ विविध वस्तुएँ देखने को मिलें। पुनः उन पर विचार-विमर्श करे ताकि ज्ञान स्थाई हो सके। यह तभी सम्भव है जब शिक्षक निम्न बातों पर ध्यान दे :

(1) **यात्रा स्थल का चुनाव-** या तो स्वयं के अनुभव के आधार पर अथवा अपने साथियों के साथ विचार-विमर्श करे।

(2) **यात्रा की समुचित योजना-** शिक्षक को बनानी होगी जिसमें (i) छात्रों को आवश्यक निर्देश, (ii) घर से उचित तैयारी, (iii) उचित सम्पर्क की व्यवस्था, (iv) भौगोलिक तथ्यों की सूची, (v) ठहरने की व्यवस्था आदि सम्मिलित होगी।

(3) **यात्रा के बाद छात्रों के साथ विचार-विमर्श-** एवं उन्हें यात्रा पर अपने अनुभव लिखने को प्रेरित करे।

इस विधि पर प्रायः यह आक्षेप लगाया जाता है कि इसमें समय अधिक नष्ट होता हैं। परन्तु यह बात तभी लागू होती है, जब शिक्षक बिना किसी पूर्व तैयारी व योजना के छात्रों को भ्रमण पर ले जाय। यदि उचित तैयारी व योजना के आधार पर अध्ययन कराया जाय तो यह आक्षेप निराधार सिद्ध होगा।

13. योजना (प्रोजेक्ट) विधि

वर्तमान शिक्षण विधियों में योजना विधि (Project Method) का महत्त्वपूर्ण स्थान है। शिक्षा के क्षेत्र में 'प्रोजेक्ट' शब्द 20 वीं सदी में आया। शिक्षा में पुनः इस शब्द का प्रयोग गृह-कार्यों में किया गया परन्तु इस विधि के अधिक प्रसिद्धदाता डब्ल्यू.एस. किलपेट्रिक थे। किलपेट्रिक ने प्रोजेक्ट की परिभाषा इस प्रकार दी है:

"प्रोजेक्ट पूरे मन से किया जाने वाला सोद्देश्य कार्य है, जो सामाजिक वातावरण में सम्पन्न किया जाता है।"

स्टीफन ने इसे एक समस्यामूलक कार्य कहा है जो अपनी स्वाभाविक परिस्थितियों में सम्पन्न किया जाता है।

उक्त दोनों ही परिभाषाओं के आधार पर यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि प्रोजेक्ट वह विधि है जिसमें किसी समस्या अथवा उद्देश्य को लेकर छात्र अथवा कोई भी व्यक्ति उसे स्वाभाविक वातावरण में पूरा करने का प्रयास करता है।

किलपेट्रिक ने विभिन्न प्रकार के प्रकल्पों को चार भागों में बाँटा है :

(i) किसी विचार अथवा योजना को सृजनात्मक रुप देना यथा भारत के धरातल के विचार को मॉडल का रुप देना।

(ii) जहाँ उद्देश्य भाव-निरुपण एवं सौन्दर्य हो; यथा मॉडल के आधार पर धरातल के उच्च भागों, पहाड़ी भागों तथा मैदानों को रगों के आधार पर एक सुन्दर मॉडल को पढ़वाना, पढ़ना तथा प्रश्न करना।

(ii) जहाँ किसी समस्या को सुलझाना हो; उदाहरणार्थ- बम्बई बन्दरगाह क्यों है? अहमदाबाद में सूती कारखाने अधिक क्यों स्थापित हैं?

(iv) जहाँ कार्य का उद्देश्य कुशलता पैदा करना हो; जैसे मानचित्र बनवाना, मानचित्रांकन कराना।

किसी भी प्रोजेक्ट को लेने के बाद उसे सम्पन्न करने के लिए कुछ निर्धारित पदों (Steps) को अपनाना होता है। प्रोजेक्ट में आवश्यक नहीं कि निम्न चरण ही हों, आवश्यकतानुसार अधिक भी हो सकते हैं। वैसे मुख्यरुप से चार पद होते हैं:

(1) उद्देश्य-निरुपण (Purposing)।

(2) योजना (Planning)।

(3) कार्यान्वन (Executing)।

(4) निर्णय (Judging)।

भूगोल में अनेकानेक बिन्दुओं को प्रोजेक्ट/ प्रकल्प (Project) विधि से पढ़ाया जा सकता है, परन्तु विशेषकर व्यावहारिक भूगोल (Practical Geography) तथा भूगोल के कौशल पक्ष के विकास के लिए यह विधि अत्यन्त उपयुक्त रहती है।

भूगोल में निम्न विषयों को प्रोजेक्ट विधि द्वारा भली प्रकार पढ़ाया या समझाया जा सकता है। :

(i) मॉडल निर्माण करवाना।

(ii) रिलीफ मानचित्र, मानचित्र, प्रक्षेप आदि बनवाना।

(iii) ग्लोब-निर्माण।

प्रोजेक्ट के मुख्य कार्यक्रम

प्रोजेक्ट के मुख्य कार्यक्रम जिनसे प्रोजेक्ट आकर्षक तथा अधिक उपयोगी है सकता है वे अधोलिखित हो सकते हैं -

(1) **मानचित्र, अंकन एवं रेखाचित्र अंकन की प्रतियोगिता-** शिक्षक द्वारा इस प्रकार की प्रतियोगिता आयोजित की जा सकती है जिसमें प्रोजेक्ट के विविध चरणों के मानचित्र बनवाये जा सकते हैं। उदाहरणार्थ यदि गंगा प्रोजेक्ट लें तो गंगा जहाँ से निकलती है उस स्थान की स्थिति का, इसके प्रभाव का, इसके द्वारा सिंचित क्षेत्र का, प्रभावित जनसंख्या का, धार्मिक क्षेत्रों आदि के मानचित्र बनाये जा सकते हैं।

(2) **पत्रवाचन प्रतियोगित।-** प्रोजेक्ट के पूर्ण होने के बाद छात्रों को एक लेख लिखने को कहा जाय जिसे वे विभिन्न दृष्टिकोण से सभी छात्रों के समक्ष पत्र वाचन द्वारा प्रस्तुत करें। इस तरह विभिन्न दृष्टिकोण तथा क्षेत्रों का ज्ञान छात्रों को हो सकता है। इसके लिए वे पुस्तकालय, यदि विदेशों से सम्बन्धित होतो विदेशी दूतावासों से संपर्क किया जा सकता है। गंगा के सम्बन्ध में गंगा का प्रवाह क्षेत्र इसके धार्मिक सांस्कृतिक एवं सामाजिक महत्त्व, राष्ट्रीय एकता के लिए महत्त्व, कृषि एवं जन संख्या पर प्रभाव, आदि पर पत्र वाचन हो सकता है।

(3) **प्रदर्शनी-** प्रोजेक्ट से सम्बन्धित मानचित्र, रेखाचित्र, मॉडल, पोस्टर, बुलेटिन बोर्ड फिल्म स्लाइड्स तत्सम्बन्धी जन-जीवन की वेशभूषा, रीति-रिवाज आदि संबंधित चित्रों की प्रदर्शनी आयोजित की जानी चाहिए जिसमें समुदाय तथा अभिभावकों को भी आमन्त्रित किया जाना चाहिए।

इससे विद्यार्थियों के साथ-साथ उनके अभिभावकों का भी ज्ञानवर्धन होगा साथ ही विद्यालय तथा विद्यार्थियों का मनोबल भी बढ़ेगा।

(4) **उत्सव-** अन्त में एक उत्सव मनाना चाहिए जिसमें बाहर के शिक्षक प्रतिनिधियों को, समुदाय के लोगों को आमन्त्रित किया जाना चाहिए। इसी उत्सव में छात्रों के मनोबल बढ़ाने के लिए छात्रों द्वारा पत्रवाचन, प्रदर्शनी विशेषताओं, प्रोजेक्ट विवरण, उपलब्धियों का विवरण आदि प्रस्तुत किये जाने चाहिये।

(5) **मूल्यांकन-** अन्त में प्रोजेक्ट का मूल्यांकन किया जाना चाहिए। इसमें प्रत्येक क्षेत्र तथा समूह दोनों के कार्यों का मूल्यांकन होना चाहिए। जहाँ कमजोरी है, वहाँ भविष्य के लिए मार्ग दर्शन तथा अच्छे कार्य की प्रशंसा होना चाहिए। प्रतियोगिता में जीतने वालों को पारितोषिक तथा प्रमाण पत्र दिया जाना चाहिए। अन्त में एक परीक्षा लेनी चाहिए। यह भी हो सकता है प्रोजेक्ट शुरु होने से पहले भी उस विषय पर एक जाँच करली जाय ताकि इसकी सार्थकता को देखा जा सके।

14. समस्या समाधान विधि

योजना विधि के समान ही एक और अन्य विधि है- समस्या समाधान विधि। इसे परीक्षण विधि भी कहा जाता है। पाठ को आकर्षक बनाने एवं छात्रों के अधिकाधिक सहयोग हेतु शिक्षक समस्या विधि का प्रयोग करता है। यह विधि प्राय: मानसिक शंकाओं के समाधान के लिए काम में लाई जाती है। इस तरह यह विधि कम से कम माध्यमिक स्तर पर ही शुरू की जा सकती है।

इस विधि के द्वारा एक बड़ी समस्या को अनेक छोटी समस्याओं में विभक्त कर लिया जाता है। पुनः एक-एक करके हल कर लिया जाता है। वस्तुतः समस्या विधि, बौद्धिक कुशाग्रता को बढ़ाने के लिए प्रयुक्त होती है। छोटी-छोटी समस्याएँ छात्र तर्क और विवेक के आधार पर सोचते हैं। उदाहरणार्थ- भूमि कटाव क्यों होता है? छात्र अपने निरीक्षण के ज्ञान और तर्क के आधार पर निष्कर्ष निकालने में सफल हो सकते हैं कि अधिकांश कटाव का कारण बहता हुआ जल ही क्यों है?

समस्याएँ कक्षा के स्तर के अनुकूल छोटी और बड़ी हो सकती हैं। शिक्षक को यह आवश्यक है कि वह छात्रों को उनकी रुचि, स्तर अथवा क्षमता के अनुरुप ही समस्या को हल करने को दे। इसमें एक खतरा यह है कि यदि छात्रों को प्रारम्भ में बड़ी-बड़ी समस्याएँ दी गईं तो विषय के प्रति रुचि कम हो सकती है और विषय के प्रति उपेक्षा बढ़ जायेगी। इसके विपरीत, उनके स्तर के अनुकूल समस्याएँ होने से उनकी रुचि विषय में बढ़ जायेगी।

समस्या-विधि में प्रयुक्त होने वाले पद

(i) समस्या का उद्‌भव।
(ii) समस्या का परिभाषीकरण।
(iii) समस्या के हल के लिए आवश्यक दत्त संग्रह करना।
(iv) समस्या समाधान सम्बधी विकल्पों का निश्चय।
(v) समाधान हेतु विकल्पों का वरीयता क्रम तय करना।
(vi) समाधान के लिए उपयुक्त विकल्पों को क्रमशः लागू करना।
(vii) समस्या समाधान की स्थिति का मूल्यांकन।

सर्वप्रथम छात्रों को उनके दैनिक जीवन से सम्बन्धित अनेक समस्याओं से परिचित कराया जाता है। यो समस्याएँ उनके पाठ से सम्बन्धित भी हो सकती हैं। ये समस्याएँ व्यक्तिगत रुप से भी छात्रों को दी जा सकती हैं और सामूहिक रूप से भी। यदि व्यक्तिगत रूप से समस्याएँ दी जाती हैं तो छात्रों को उनकी रुचि की समस्या दी जानी चाहिए। उदाहरणार्थ- भारत का मानचित्र, राजस्थान का मानचित्र, मॉडल आदि का निर्माण। यदि समस्या बड़ी है तो ग्रुप अथवा सामूहिक रुप से भी समस्या के समाधान के लिए कहा जा सकता है।

द्वितीय चरण में शिक्षक और विद्यार्थी अनुभूत समस्या पर विचार विमर्श कर समस्या की निश्चित परिभाषा तय करते हैं।

तृतीय पद में जब छात्र अथवा छात्रों के समूह समस्याएँ चुन चुके होते हैं।तब उस समस्या अथवा समस्याओं पर विचार करने के लिए कहा जा सकता है कि किस प्रकार से वे समस्या को हल करेंगे। समस्या को हल करने के लिए आवश्यक दत्तों सामग्री के संग्रह के लिए कहा जाता है।

चतुर्थ चरण में योजना के अनुसार समस्या-समाधान के लिए छात्रों द्वारा संग्रहित आवश्यक सामग्री उपयुक्त ढंग से प्रयोग पर विचार करते हैं। उदाहरणार्थ- इसे सामग्रियों का आयोजन का चरण कहा जाता है। यदि किसी धरातल का मॉडल बनाना है तो उसके लिए आवश्यक सामग्री मिट्टी-कुट्टी, रंग आदि इकट्ठा करना इस चरण में हो सकता है।

पंचम् चरण में छात्र समस्या के हल के लिए उपयुक्त आवश्यक सामग्री एवं तथ्यों के प्रयोग के आधार पर समस्या के समाधान के सर्वाधिक उपयुक्त विकल्प अथवा सामग्री का

चुनाव करते हैं। यह उनकी समस्याओं के समाधान का चरण होता है। परन्तु इस चरण में भी बहुत सारी कमियाँ रह सकती हैं। अतः पुनः ग्रुप, शिक्षक के साथ विचार-विमर्श, कर समस्या के हल के लिए विकल्पों की वरीयता सम्बंधी अन्तिम निर्णय किये जाते हैं।

इस विधि का अंतिम चरण यह होता है, जबकि पूर्व-निश्चित समस्याओं के समाधान के स्थायी हलों के ऊपर विचार-विमर्श करके प्राप्त तथ्यों पर आँकड़ों की परख आदि के बाद छात्र सत्य अथवा निष्कर्ष पर पहुँच कर निर्णयों को लागू करते हैं।

(1) इसमें छात्रों के सामने प्रयोजन होता है।
(2) छात्रों में अध्ययन के लिए रुचि जाग्रत होती है।
(3) यह विधि तर्क-शक्ति को बढ़ाती है, जीवन की समस्याओं का हल करने की क्षमता बढ़ाती है।
(4) छात्र क्रियाशील रहते हैं।
(5) यह ज्ञानार्जन की वैज्ञानिक विधि है।
(6) समस्याएँ सामूहिक एवं व्यक्तिगत रूप से जुटाई जा सकती हैं।
(7) छात्र विविध साधन-सामग्री का प्रयोग करता है।
(8) स्वयं कार्य करने की प्रवृत्ति को प्रोत्साहन मिलता है।
(9) छात्रों में पारस्परिक सहयोग बढ़ता है।

यह विधि बड़ी ही महत्वपूर्ण है। सच पूछा जाय तो यह विधि खोज विधि जैसी है। यह एक अत्यन्त मनोवैज्ञानिक विधि है। परन्तु इसमें जो दोष है, वह यह है कि इस विधि को हरेक छात्र नहीं अपना सकता है और न ही हर एक अध्यापक छात्रों को इस विधि से पढ़ा सकता है। इसके लिए कुशल और विद्वान शिक्षक की आवश्यकता है तभी यह विधि अपनाई जा सकती है।

15. प्रयोगशाला विधि

यह विधि एक तरह से योजना विधि (Project Method) तथा समस्या विधि अथवा वैज्ञानिक विधि का ही एक भाग है। प्रायः जब समस्या विधि अथवा प्रोजेक्ट विधि में छात्र पुस्तकालय, वाचनालय अथवा विज्ञान की प्रयोगशाला में योजनाबद्ध तरीके से अध्ययन करते हैं तब शिक्षक देख-रेख के लिए रहता है। विज्ञान के विषयों में तो प्रयोगशाला का अत्यन्त महत्त्व है। भूगोल को एक प्रकार से विज्ञान के विषय में ही सम्मिलित किया जाता है। भूगोल-कक्ष में बैठकर अनेक उपकरणों से मानचित्र, चार्ट आदि बनाते हैं। इस प्रकार के अध्ययन को प्रयोगशाला विधि कहा जा सकता है जिसमें छात्र शिक्षक के मार्गदर्शन में ज्ञानार्जन करते हैं। जिन देशों में विज्ञान एवं भौतिक प्रगति अधिक है एवं पाठ्य-पुस्तकें ही ज्ञान का स्रोत नहीं हैं वरन् अनेक सहायक पुस्तकें, पत्र-पत्रिकाएँ, मानचित्र, ग्राफ, चित्र, एपिस्कोप, एपीडाईस्कोप, रेडियो, टेलीविजन आदि उपलब्ध हैं, वहाँ इस प्रकार का शिक्षण अत्यन्त लाभकारी होता है। इसमें सबसे अच्छी बात यह है कि शिक्षक केवल योजना एवं अन्य सामग्री के बारे में ही निर्देश देता है, शेष सारा कार्य विद्यार्थी ही शिक्षक के मार्गदर्शन में करते हैं। इस प्रकार प्रारम्भ से ही आत्म-निर्भर रहने की प्रवृत्ति छात्रों में पैदा हो जाती है।

इस विधि में यों तो प्रयोगों पर महत्त्व दिया जाता है, जो विज्ञान के विषयों के साथ ही लागू होते हैं, परन्तु भूगोल में भी अनेक प्रयोग किये जाते हैं; यथा- ज्वालामुखी कैसे

आता है? उनका क्या प्रभाव पड़ता है? धाराएँ कैसे बनती हैं? आदि। इसके लिए भूगोल-कक्ष का अलग से होना नितान्त आवश्यक है जहाँ छात्र अनेक उपकरणों के माध्यम से कार्य करता है, यथा ट्रेसिंग कार्य, मानचित्र आदि।

शिक्षक का कार्य यह होता है कि वह छात्रों को नियमित रूप से अन्य व्यावहारिक कार्य करने के लिए दे। छात्र शिक्षक के मार्गदर्शन में कार्य करते रहें। जहाँ आवश्यक हो वहाँ शिक्षक सहायता करे। इस तरह एक शिक्षक प्रायः निरीक्षक का कार्य करता है।

इस विधि में असुविधा यही है कि यदि उचित भूगोल-कक्ष नहीं हुआ और शिक्षक ने पूर्ण रुचि और दक्षता के साथ कार्य नहीं लिया तो छात्रों को कार्य करने में असुविधा रहेगी। परन्तु शिक्षक के व्यक्तिगत मार्गदर्शन, रुचि आदि से छात्रों के अध्ययन में विशिष्ट रूप से सहायता मिलेगी। यह विधि केवल विषय को आंशिक रूप से आध्ययन में मदद देती है। परन्तु यदि समुचित मानचित्र तथा अन्य उपकरण शाला के भूगोल-कक्ष में उपलब्ध हों तो छात्र भूगोल विषय के अधिकांश भाग का समुचित अध्ययन कर सकते हैं।

16. डाल्टन विधि

प्रयोगशाला विधि से मिलती-जुलती एक और विधि डाल्टन विधि है। इस विधि की प्रेणता कुमारी हेलन पार्खर्स्ट (Helen Parkherst) थीं। कुमारी हेलन पार्खर्स्ट ने सर्वप्रथम इस विधि को अमेरिका के डाल्टन नगर में प्रारम्भ किया था अतः इसे डाल्टन- प्रणाली के नाम से जाना गया।

इस प्रणाली की विशेषता यह है कि इसमें समस्त स्कूलों की कक्षाएँ प्रयोगशालाएँ होती हैं। प्रत्येक कक्षा के छात्र को साप्ताहिक, मासिक, पुनः वर्ष भर का कार्य करने को दे दिया जाता है। इस तरह छात्र, कार्य को सप्ताहिक, मासिक अथवा त्रैमिसिक रूप से करने का ठेका (Contract) लेता है। इस वजह से हम इसे कन्ट्रेक्ट विधि भी कहते हैं।

इस विधि में प्रत्येक छात्र अपना कार्य स्वेच्छा से व अपनी सुविधा से करने के लिए स्वतंत्र होता है, चाहे वह उसे कभी भी करे। केवल उसे यह कार्य निश्चित अवधि में पूरा करना पड़ता है। इस तरह से उसके मानस पर कोई भार नहीं होता है।

पुनः प्रत्येक छात्र को अपनी रुचि और योग्यता के अनुरुप कार्य करने को मिल जाता है।

शिक्षक का कार्य केवल आवश्यक निर्देश देना होता है। छात्र विभिन्न प्रयोग शालाओं मे जा-जाकर कार्य करते हैं। विभिन्न साधन-सामग्रियों के समुचित उपयोग के लिए निर्देशन दे दिए जाते है। अन्त में शिक्षक का कार्य केवल निरीक्षण का रह जाता है।

इस प्रणाली का लाभ यह है कि छात्र स्वयं करके स्वतंत्र रुप से कार्य करना सीखते हैं। परन्तु इसमें अनेक खतरे आते हैं। छात्र प्रारंभ में कार्य नहीं करते। अवधि की समाप्ति पर भाग-दौड़ करते हैं, जिससे कार्य अच्छा नहीं होता।

पुनः इसमें अधिकांश वस्तुगत ठेका होता है। प्रत्येक छात्र अपने-अपने कार्य में लगा रहता है इससे छात्रों की समूहिक भावना का विकास नहीं होता है। कमजोर छात्र निरन्तर पिछड़ते जाते हैं। शिक्षक भी कोई निश्चित जिम्मेदारी न होने से, निष्क्रिय रूप से सारे समय कक्षा में बैठा रहताहै। इस तरह की अवस्था भारतीय स्कूलों के लिए तो बिलकुल उपयुक्त नहीं है।